

मूल्य विकास में श्लोकों एवं सूक्तियों की प्रासंगिकता (परोपकार, न्यायप्रियता, अनुशासन, अतिथि सत्कार)

बच्चों के व्यक्तित्व का विकास करने तथा समाज में अभ्यर्थित होने के लिए नीतिपरक श्लोकों और सूक्तियों को पाठ्यपुस्तकों में समाहित किया गया है। इनके अध्ययन से बच्चों में चारित्रिक विकास के साथ-साथ व्यावहारिक परिवर्तन भी होता है। जिससे बच्चे अपने से बड़ों का आदर करना, अतिथि सत्कार करना, समय का पालन करना, परोपकार करना, सत्य बोलना, अनुशासन में रहना, अध्ययन के प्रति जागरूक होना, देशप्रेम, सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करना आदि नैतिक मूल्यों का पालन करते हैं। साथ ही साथ बच्चों को अपने कर्तव्य का भी ज्ञान होता है।

सत्संगति—

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्
मनोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुसाम्॥

अर्थ—सत्संगति बुद्धि की जड़ता हरती है, वाणी में सत्यता सींचती है, सम्मान बढ़ाती है, पाप दूर करती है, मन को प्रसन्न करती है, सब दिशाओं में यश को फैलाती है। भला कहो, सत्संगति मनुष्यों की कौन-कौन सी भलाई नहीं करती।

सुलभो दुर्जनाश्लेषो दुर्लभः सत्समागमः।

दुर्जनों का मिलना बहुल सुलभ है पर सज्जनों का मिलना बहुत दुर्लभ है।

न चाऽफल सत्पुरुषेण संतम्।

सत्पुरुषों की संगति निष्फल नहीं होती।

राष्ट्रीय एकता—

अनेके प्रदेशाः अनेके च वेशाः
अनेकानि रूपाणि भाषा अनेकाः।
परं यत्र सर्वे वयं भारतीयाः
प्रियं भारतं तत् सदा रक्षणीयम्।

मूल्य विकास में श्लोकों एवं सूक्तियों की प्रासंगिकता

इस भारतवर्ष में अनेक प्रदेश हैं और विभिन्न प्रकार की वे भाषा है व अनेक प्रकार के रंग रूप वाले व्यक्ति निवास करते हैं और उनकी भाषा भी अनेक है परन्तु यहाँ सभी भारतीय हैं। अतः प्रिय भारत की रक्षा करनी चाहिए।

विद्या की महत्ता—

विद्या नाम नरस्य रूपमाधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते, नहि धनं विद्याविहीनः पशुः।

अर्थ—विद्या मनुष्य की सबसे बड़ी सुन्दरता है, यह उसका छिपा हुआ सुरक्षित धन है, विद्या ही भोग—विलास देने वाली, यश और सुख देने वाली है तथा गुरुओं की गुरु है, विदेश में विद्या ही मित्र बनती है, विद्या परम देवता है, राजाओं के बीच विद्या पूजी जाती है, धन नहीं पूजा जाता है। विद्या विहीन मनुष्य पशु के समान है।

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम्।

अर्थ—सभी श्रेयस्कर वस्तुओं में ज्ञान सबसे बड़ा श्रेयस्कार है।

ज्ञानं न किं किं कुरुते नृणाम्।

अर्थ—ज्ञान मनुष्यों का क्या—क्या हित सिद्ध नहीं कर देता ? अर्थात् सारे हित सिद्ध करता है।

परोपकार—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाय सतां विभृतमः।

अर्थ—नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीती, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, बादल अपना उगाया हुआ अन्न स्वयं नहीं खाते। सत्पुरुषों का जीवन परोपकार के लिए ही होता है।

नोपकारात् परो धर्मो नापकारादघं परम्।

अर्थ—उपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं और अपकार से बढ़कर कोई पाप नहीं।

परोपकाराः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

अर्थ—पुण्य के लिए परोपकार होता है और पाप के लिए परपीड़ा।

न्यायप्रियता—

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः पदं न धीराः।

अर्थ—नीति निपुण निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आवे या अपनी इच्छा से चली जाये, आज ही मृत्यु हो या युगों के बाद, धीर पुरुष न्याय के पद से विचलित नहीं होते हैं।

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यश्चोऽपि सहायताम्।

अर्थ—जो न्याय का पालन करता है उसकी पशु-पक्षी भी सहायता करते हैं।

न्यायेन चरतां लोक इहाऽमुत्र छविनृणाम्।

अर्थ—न्याय के अनुसार चलने वाले मनुष्यों की इस लोक तथा परलोक में भी शोभा होती है।

अतिथि सत्कार—

अतिथि देवो भव।

अर्थ—अतिथि देवता के समान होता है।

न कंचन बसतौ प्रत्याचक्षीत।

अर्थ—घर में किसी के ठहरने से रोकना नहीं चाहिए।

अतिथिः किल पूजार्हो प्राकृतोऽपि विजानता।

अर्थ—ज्ञानवान के लिए साधारण अतिथि भी पूजा के योग्य होता है।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।

अर्थ—घर में आने पर शत्रु का भी आतिथ्य करना चाहिए।

स्वानुशासन—

यास्त्वन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेडर्जुन।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।

अर्थ—हे अर्जुन! जे मनुष्य मन से इन्द्रियों पर नियंत्रण करके आसक्ति रहित होकर समस्त इन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ हैं

स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः ।

अर्थ—जो इन्द्रिय निग्रह रूपी जल में स्नान किया हुआ है उसी का स्नान यथार्थ है और वही बाहर से तथा भीतर से पवित्र है।

गुणग्राही—

शत्रोरपि गुणा ग्राहाः ।

अर्थ—शत्रु से भी गुणों को ग्रहण करना चाहिए।

नात्यन्तं गुणवत् किञ्चिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम् ।

अर्थ—न तो कोई वस्तु अत्यन्त गुणशाली होती है और न तो अत्यन्त गुणहीन ही होती है।

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।

अर्थ—गुणों के कारण मनुष्य सब जगह पहुँच जाता है।

गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः ।

अर्थ—गुणियों की पूजा के कारण उनके गुण होते हैं, उनके बाहरी वेष और वय (अवस्था) नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्लोकों एवं सूक्तियों में जीवन के सत् एवं असत् दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है। असत् से बचने तथा सत् के अनुष्ठान का उपदेश दिया गया है। नीति एवं धर्म (कर्तव्य अर्थ में) दोनों से इसका संबंध है। इनका लक्ष्य मनुष्य को आदर्शवादी बनाने के साथ-साथ उसे लोक व्यवहार में पटु भी बनाना है। सरल शैली में होने से इसमें रोचकता का अत्यधिक निवेश भी है। संस्कृत की शिक्षा का आरम्भ करने वाले कोमलमति बच्चों के लिए ये सर्वथा उपादेय हैं।

डॉ. नीलम यादव ,राज्य हिंदी संस्थान ,वाराणसी